संस्करण - 3 अंक - 3 जुलाई 2023

प्रज्ञाम्बु

cGanga
गंगा नदी घाटी प्रबंधन एवं अध्ययन केंद्र

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर द्वारा संचालित गंगा नदी घाटी प्रबंधन एवं अध्ययन केंद्र (cGanga) की इस त्रैमासिक पत्रिका का उद्देश्य जल और नदी पुनरुद्धार एवं संरक्षण के प्रबंधन से संबंधित विभिन्न विषयों पर देश-विदेश से उपलब्ध पारंपरिक ज्ञान एवं विज्ञान के समन्वय पर आधारित जानकारी संबंधित संस्थाओं एवं नागरिकों तक पहुचाना है।

समर्थ नदियां, उन्नत कृषि

नदियां हमारे जीवन की अनिवार्यता हैं और कृषि हमारी अर्थव्यवस्था का आधार। नदियों और कृषि के बीच गहरा संबंध है, दोनों एक–दूसरे के स्वास्थ्य और संसाधनों के लिए पूरक सहयोगी की तरह हैं। विगत कुछ वर्षों से कृषि और नदियों को एक–दूसरे के पूरक की बजाय प्रतिद्वंदी के नजरिए से देखा जा रहा है। विश्वभर में यह बात प्रचारित की जा रही है कि कृषि नदियों में प्रदूषण बढ़ने का एक मुख्य कारण है।

प्रज्ञाम्बु के पिछले अंक में हमने भारत के संदर्भ में इस मान्यता को परखा और पाया कि नदियों के स्वास्थ्य को दुष्प्रभावित करने का प्रमुख कारण कृषि नहीं है। नदियों की निर्मलता और उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कई अन्य कारण हैं, जिनके समक्ष कृषिजनित प्रभाव लगभग नगण्य प्रतीत होते हैं। इस अंक में गत अंक के विमर्श को आगे बढ़ाते हुए हम नदियों की समस्याओं के ऐसे संभावित समाधानों पर चर्चा करेंगे जिनके क्रियान्वयन से नदियां और कृषि भूमि दोनों स्वस्थ रहें और फसलें भी उन्नत हों। ऐसे समाधान जो जलीय परितंत्र और मृदा के परितंत्र को संतुलित बनाते हुए सर्वे संतु निरामया:, के सिद्धांत पर आधारित हो।

समाधान पर चर्चा से पहले समस्या के विभिन्न आयामों पर नजर डालते हैं। हमारे दैनिक जीवन में खतरनाक रसायनों के प्रवेश ने ना केवल नदियों बल्कि समूचे पर्यावरण के सामने नई–नई चुनौतियां खड़ी की हैं। कुछ शोधपत्रों में यह तथ्य सामने आया कि चाय–कॉफी के कप, जिन्हें पर्यावरण हितैषी समझ कर इस्तेमाल किया जा रहा है, उनकी बाहरी पर्त बनाने में उपयोग किये जाने वाले पदार्थों की वजह से जलस्रोतों में प्रदूषण स्तर काफी बढ़ गया है। इसी तरह नॉनस्टिक बर्तनों की बाहरी सतह बनाने में जो रसायन इस्तेमाल किये जाते हैं, उन रसायनों का सूक्ष्म अंश हर बार बर्तन धोने पर अपशिष्ट जल में मिल जाता है।

सोचिए, जब लाखों घरों में रोजाना ऐसे बर्तन धुलते होंगे तो कितनी अधिक मात्रा में ये खतरनाक रसायन, अपशिष्ट जल में मिलते होंगे। अपशिष्ट जल का प्रबंधन आज भी हमारे छोटे–बड़े शहरों के समक्ष एक चुनौती है। यही अपशिष्ट जल, हमारी जीवनशैली में आ रहे बदलावों के चलते पहले से अधिक हानिकारक होता जा रहा है। साबुन, शैम्पू, हेअर कंडीशनर, हेअर कलर, डिश वॉश, डिटर्जेंट जैसे तमाम उत्पादों में फॉस्फोरस के यौगिक शामिल होते हैं और इस तरह महानगरों, शहरों, कस्बों और गांव के घरों से निकलने वाले अपशिष्ट जल के साथ बड़ी मात्रा में फॉस्फोरस नालों और छोटी नदियों के पानी में मिलकर बड़ी नदियों तक पहुंच जाता है। इन सब कारणों का तुलनात्मक विश्लेषण करने पर हम पाएंगे कि कृषि की वजह से नदियों या जलस्रोतों पर होने वाले प्रभाव अन्य कारकों की तुलना में बहुत कम हैं। बहुप्रचारित मान्यता के अनुसार कृषि में इस्तेमाल किये जाने वाले उर्वरकों का कुछ अंश येन–केन–प्रकारेण नदियों या जलाशयों तक पहुंच जाता है जो जल के पोषक तत्वों में वृद्धि का कारण बनता है। जल के पोषक तत्वों में वृद्धि के चलते जलीय खरपतवारों खासकर जलकुंभी को वृद्धि का अवसर मिलता है।

हमारी झीलों, तालाबों और नदियों में जलकुंभी का कब्जा है लेकिन इसका एकमात्र कारण कृषि या कृषि में इस्तेमाल किये जाने वाले उर्वरक नहीं हैं क्योंकि जलस्रोतों में जलकुंभी का अतिक्रमण हरित क्रांति के पूर्व प्रारंभ हो चुका था। गौरतलब है कि कृषि में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग को हरित क्रांति के दौरान प्रोत्साहित किया गया। हरित क्रांति से कई वर्ष पूर्व अंग्रेजी शासनकाल में बंगाल के रास्ते जलकुंभी ने भारत में प्रवेश किया और स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही इसने जलस्रोतों के समक्ष समस्याएं खड़ी कर दी थी।

यदि वर्तमान परिदृश्य पर नजर डालें तो पाएंगे कि शहरों की कई छोटी–बड़ी नदियां गंदे नालों में परिवर्तित होकर शहर के मध्य से गुजर रही हैं। नागपुर की नाग नदी, पुणे की मूथा–मूला नदी और दिल्ली की यमुना नदी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। इन बेहद प्रदूषित नदियों के प्रदूषण की वजह अनुपचारित शहरी अपशिष्ट और औद्योगिक अपशिष्ट का नदियों में मिलना है। यमुना नदी में पनपते झाग की वजह भी पानी में फॉस्फोरस के यौगिकों की प्रचुरता है।

जहां तक सवाल नदियों या अन्य जलस्रोतों में जलीय खरपतवारों में वृद्धि का है, इसके तीन कारण हैं: पहला है प्राकृतिक कारण, खरपतवारों की मूल प्रवृत्ति ही तेज बढ़ने की है। दूसरा, हमारे देश में सूर्य प्रकाश की प्रचुर उपलब्धता और तीसरा कारण है, पोषण संवर्धन। पोषण संवर्धन के कई कारण हो सकते हैं, मसलन घरेलू अपशिष्ट।

एक अंतर्राष्ट्रीय एजेंसी के मुताबिक महानगरों से निकलने वाले घरेलू अपशिष्ट में 20 मिलीग्राम प्रति लीटर तक फॉस्फोरस और 20 से 100 मिलिग्राम प्रति लीटर तक नाईट्रोजन होती है। इससे

अनुमान लगाया जा सकता है कि घरेलू अपशिष्ट जब अनुपचारित रूप में हमारी नदियों या जलनिकायों तक पहुंचता होगा तो पोषण संवर्धन की दर कितनी तेजी से बढ़ती होगी। आज कश्मीर से लेकर केरल तक, पंजाब से लेकर गुजरात तक हर प्रांत के जलस्रोत जलकुंभी, घडियाली घास, एलिगेटर वीड या वॉटर मॉस जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं।

अब एक नजर डालते हैं कृषि क्षेत्र की समस्याओं की ओर। कृषि क्षेत्र एक ओर पानी की कमी से जूझ रहा है, दूसरी चुनौती है मृदा का स्वास्थ्य। कृषि विशेषज्ञ अनेक बार मृदा में पोषक तत्वों की कमी और मृदा के सूक्ष्मजैविक परितंत्र में आ रही गिरावट पर चिंता जाहिर कर चुके हैं। तीसरी चिंता है, भूमि की उर्वरकता का घटना और धीरे–धीरे उसका बंजर भूमि में परिवर्तित होना।

सर्वे भवन्तु सुखिन:

हमें जलस्रोतों की समस्या का समाधान इस तरह से ढूंढ़ना चाहिए, जिसके सहउत्पाद के रूप में मृदा का स्वास्थ्य भी बेहतर हो जाए। जलीय खरपतवारों के उन्मूलन की कोशिशें बीते सौ सालों से जारी है लेकिन देश और विदेशों में भी आज तक मनुष्य इन पर नियंत्रण नहीं पा सका। कई बार जलस्रोतों में रसायनिक विधियों से जलीय खरपतवारों का उन्मूलन करने के प्रयास हुए लेकिन रसायनों के उपयोग से उन वनस्पतियों का भी खात्मा हो गया, जो जलीय निकाय के परितंत्र के लिए आवश्यक थी। यही परिणाम मशीनों के इस्तेमाल से खरपतवारों को हटाने का भी हुआ। इस खरपतवार का खात्मा करने में हम सफल नहीं हो सके, अब हमें इसकी खपत करने के प्रयास करने चाहिए। जलकुंभी के उपयोग के कुछ उदाहरण इस प्रकार है।

खेतों की पलवार (मल्चिंग)

जलकुंभी का सबसे आसान उपयोग है, जलकुंभी की पत्तियों को बारिक काटकर खेतों में पलवार बिछाना (पलवार अर्थात् मृदा पर घास–फूस नुमा पर्त बिछाना)। पलवार बिछाने से मृदा में नमी बढ़ती है और सिंचाई के बाद वाष्पीकरण की दर घट जाती है जिससे कि मृदा की जल धारण क्षमता (वॉटर रिटेंशन कैपेसिटी) बढ़ती है। नमी में बढ़ोतरी से सूक्ष्मजैविक गतिविधियां बढ़ जाती हैं। यह केंचुओं की वृद्धि में भी सहायक हैं। इसके परिणामस्वरूप फसल की गुणवत्ता और मिट्टी की उर्वरकता दोनों ही बढ़ती है। भारत के उत्तरपूर्वी राज्यों में चावल की खेती में जलकुंभी की पत्तियों से बनी पलवार का उपयोग करने से सकारात्मक नतीजे मिले। उत्तरपूर्व में ही चाय के बागानों में और केरल के त्रिचूर शहर से लगे कस्बों में जलकुंभी की पत्तियों से बनी पलवार को जब हल्दी की खेती में इस्तेमाल किया गया तो बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त हुए। बांग्लादेश में जलकुंभी की पत्तियों से बनी पलवार का उपयोग करने से आलू और टमाटर की फसल में गुणात्मक और संख्यात्मक वृद्धि देखी गई।

नदियों की निर्मलता को बचाने के लिए ऐसे समाधान खोजने चाहिए, जो पर्यावरण को सकारात्मक रूप से प्रभावित करे। और उक्त स्थान के निवासियों की रोजगार संबंधी जरूरतों को भी पूरा करता हो, तो प्रकृति भी अपनी ओर से पारितोषिक देती है। इस तरह के समाधान वसुधैव कुटुम्बकम् की मूल भावना को भी साकार करते हैं, जिसके अनुसार यह पूरी वसुधंरा एक बड़ा परिवार है। खेतों में पलवार बिछाना आसान है, जो खेती में सहायक है और सूक्ष्मजीवों की वृद्धि में भी। यह सूक्ष्मजीव

उन्मूलन नहीं उपयोग

बरसों से जब इन खरपतवारों की रोकथाम के प्रयास विफल रहे हैं ऐसे में अब इसके प्रबंधन और उपयोग की ओर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। दुनिया के अलग–अलग देशों में ऐसे प्रयास चल रहे हैं। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ केमिकल टेक्नोलॉजी के वैज्ञानिकों ने एनएरोबिक फर्मनटेशन के द्वारा जलकुंभी के तने और जड़ को जैविक खाद में बदलने की विधि विकसित की है। वैज्ञानिकों का दावा है कि जलकुंभी के प्रबंधन का यह श्रेष्ठ विकल्प है। जलकुंभी से उर्वरक बनाकर, मृदा के नाईट्रोजन और फॉस्फोरस समेत अन्य पोषक तत्व दोबारा मृदा को लौटाए जा सकते हैं। इस तरह मृदा की उर्वरकता भी बनी रहेगी और जलस्रोतों को जलकुंभी के अतिक्रमण से मुक्ति मिलेगी। इसी तरह इंटरनेशनल क्रॉप रिसर्च इंस्टीट्यूट ने उड़ीसा के गांवों में जलकुंभी से प्राप्त बायोमास को जीवाणुओं के इस्तेमाल से एरोबिक विधि से खाद में तब्दील किया। इस विधि से तैयार उर्वरक में नाईट्रोजन और कार्बन का अनुपात बहुत अच्छा है। गौरतलब है कि हमारी मृदा से कार्बन लगातार घट रहा है, दूसरी ओर पर्यावरण में कार्बनडाई–ऑक्साईड के रूप में कार्बन और गर्माहट दोनों बढ़ रही हैं। इस बढ़ते तापमान को काबू में करने के लिए वैज्ञानिकों ने भूमि में कार्बन अनुक्रमण (कार्बन सीक्यूस्टरेशन) का उपाय सुझाया। कई शोध में यह परिणाम आया है कि भूमि में नाईट्रोजन, फॉस्फोरस या उसके यौगिकों की मौजूदगी से कार्बन अनुक्रमण (कार्बन सीक्यूस्टरेशन) की दर बढ़ जाती है। कार्बन अनुक्रमण अर्थात् भूमि में कार्बन की वापसी। इस प्रक्रिया का सबसे बड़ा फायदा यह है कि कार्बन की प्रचुरता भूमि की उर्वरकता को बढ़ा देती है। मृदा में कार्बन अनुक्रमण का दूसरा फायदा यह है कि मृदा में कार्बन का प्रतिशत बढ़ने के साथ सूक्ष्मजैविक गतिविधियां बढ़ने लगती हैं। जब सूक्ष्मजीव बढ़ते हैं तो वे पौधों की जड़ों की गांठ में नाईट्रोजन का संचयन कर, पौधों की वृद्धि को उत्प्रेरित करते हैं। इस तरह भूमि की उर्वरकता और फसल की गुणवत्ता दोनों ही प्राकृतिक रूप से बढ़ती हैं और फसलों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए बाहरी पदार्थों का इस्तेमाल करने की आवश्यकता भी कम हो जाती है। जिस तरह नदियों और जलाशयों का एक परितंत्र होता है, ठीक वैसे ही मृदा का भी एक सूक्ष्मजैविक परितंत्र होता है। मृदा में कार्बन की कमी से यह परितंत्र प्रभावित होता है, जिसका असर मृदा में रहने वाले अकशेरूकी जीव जैसे केंचुएं और अन्य कीट, पतंगों पर पड़ता है। यह सभी जीव मृदा की उर्वरकता को बनाए रखने में अपना योगदान देते हैं। इन जीवों की अनुपस्थिति में मृदा धीरे–धीरे बंजर होने लगती है। जैविक उर्वरक और जैविक खाद इन परिस्थितयों से बचने का बेहतर विकल्प है।

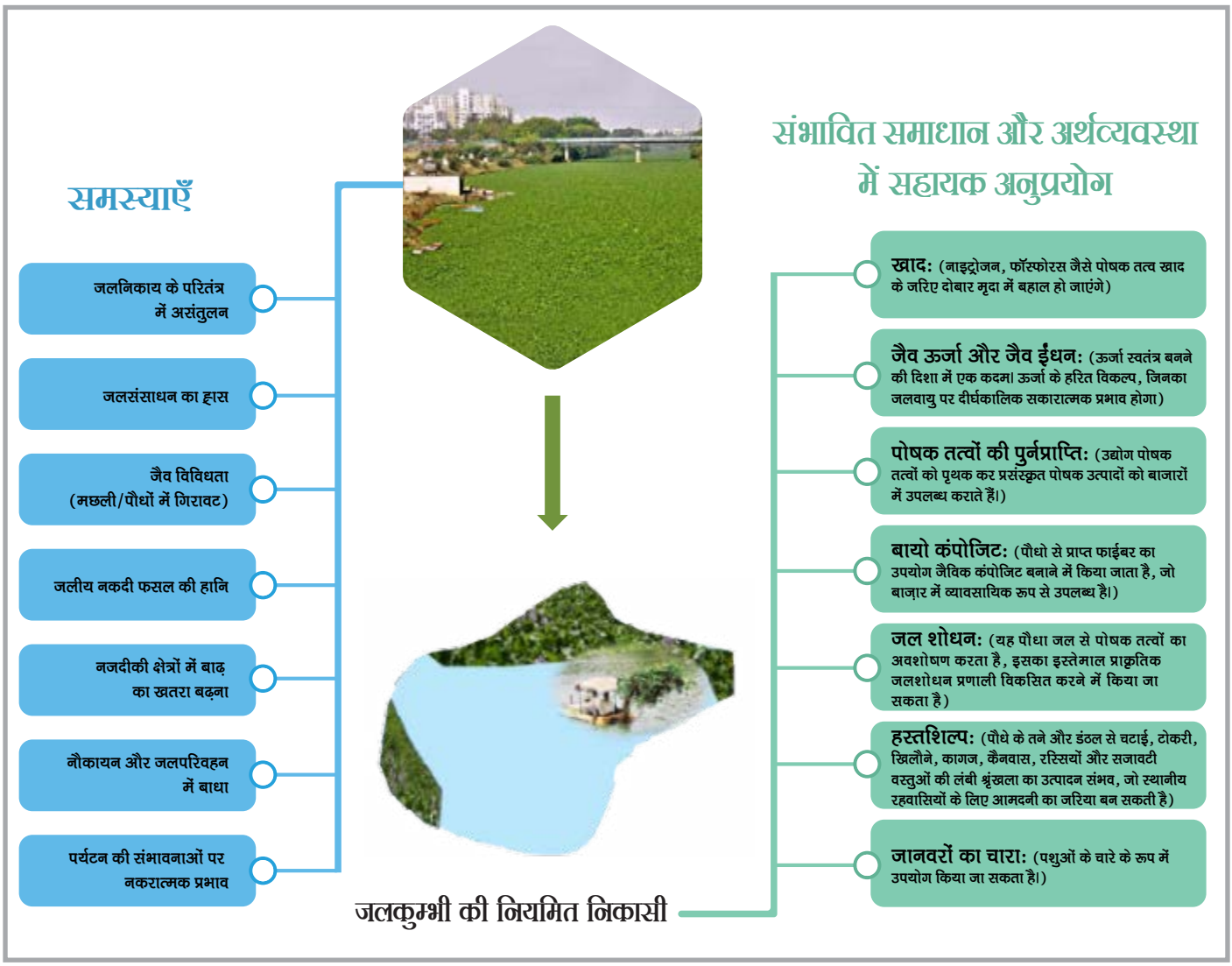

भी वसुंधरा के इस विशाल कुटुम्ब का ही हिस्सा हैं, हम उन्हें उपेक्षित कैसे छोड़ सकते हैं।

और भी हैं रास्ते जलकुंभी से इथेनॉल

जलकुंभी, जैविक इथेनॉल के उत्पादन के लिए एक सुलभ और सस्ता संसाधन साबित हो सकती है। आई आई टी खड़गपुर के साथ साथ अन्य कई शोध संस्थानों ने इस अवधारणा को साकार किया है। जलकुंभी को सल्फ्यूरिक एसीड से उपचारित कर, किण्वन (फर्मन्टेशन) के बाद इथेनॉल में परिवर्तित किया जा सकता है। जिसका इस्तेमाल जैवईंधन के रूप में वाहनों को चलाने से लेकर खाना पकाने में किया जा सकता है। यदि इस तरह की परियोजना को वृहद स्तर पर क्रियान्वित किया जाता है तो जनता को एक सस्ता जैविक ईंधन उपलब्ध करवाया जा सकता हैं।

फ्लोटिंग ट्रीटमेंट वेटलैंड्स

इस विधि से झीलों, तालाबों आदि में टापूनुमा संरचना बनाकर हाइड्रपोनिक्स द्वारा व्यावसायिक पौधों मसलन गेंदा, अश्वगंधा, गुड़हल जैसे पौधों की खेती की जाती है। इससे पानी के अतिरिक्त पोषक तत्वों का इस्तेमाल हो जाता है। जलीय खरपतवार नियंत्रित रहते हैं और व्यावसायिक लाभ भी मिलता है। आंध्रप्रदेश, केरल और दिल्ली में ऐसे प्रयोग सफल रहे हैं। बांग्लादेश में जलकुंभी के तनों से ठोस मंच (प्लेटफार्म) बनाकर उनपर सब्जियों की खेती की जा रही हैं। ये प्लेटफॉर्म पानी की सतह पर तैरते रहते हैं, जिसके कारण इन्हें फ्लोटिंग वैजिटेबल गार्डन नाम दिया गया है। इन तैरते हुए सब्जियों के बागों को स्थानीय भाषा में धाप कहा जाता है। इस तरह बिना मिट्टी के होने वाली खेती दुनिया के अन्य हिस्सों में भी प्रचलित हैं जैसे कश्मीर की डल झील और म्यांमार की इन्ले झील में। गौरतलब है कि वर्ष 2015 में संयुक्त राष्ट्रसंघ के खाद्य एवं कृषि संगठन ने कृषि की इन विधियों को कृषि की वैश्विक धरोहर घोषित किया है। दरअसल भविष्य में बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न मांग को पूरी करने के लिए कृषि की पारंपरिक विधियों के साथ इस तरह की वैकल्पिक विधियों को अपनाना एक अनिवार्यता बन जाएगी।

अन्य विकल्प

जलकुंभी से जैविक ईंटे बनाई जा सकती है, जिसका ईस्तेमाल मशरूम की खेती में किया जा सकता है। छोटे स्तर पर यह परियोजना दक्षिण भारत के कुछ इलाकों में चल रही है।वैज्ञानिकों ने जलकुंभी से सेलुयलेस एंजाईम बनाने की विधि भी विकसित की है, इस एंजाईम का उपयोग खाद्य प्रसंस्करण, औषधि, कागज और सौंदर्य प्रसाधन बनाने में होता है।

इसके अतिरिक्त भी जलकुंभी से अलग–अलग राज्यों में कई उत्पाद बनाए जा रहे हैं मसलन सजावटी वस्तुएं, कागज, कैनवास, खिलौने, चटाई, बोर्ड। उत्तरपूर्व के राज्यों में जलकुंभी के तने का प्रयोग हस्तशिल्प से कई सजावटी और दैनिक जीवन में उपयोग आने वाली वस्तुएं बनाई जा रही हैं। जिसके लिए पूर्वोत्तर वित्त विकास निगम वित्तिय सहयोग भी दे रहा है। इस तरह के प्रयोग से ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को हरित रोजगार उपलब्ध हो रहा है।

यद्यपि यह पहल भी प्रशंसनीय है किंतु इन विधियों से अपशिष्ट पदार्थ एक स्वरूप से दूसरे में परिवर्तित हो रहा है और कुछ समय बाद दोबारा ठोस या तरल अपशिष्ट के रूप में मृदा या जलीय परितंत्र में पहुंच जाता है। जलीय खरपतवार और कृषि अपशिष्ट नियंत्रण एक वैश्विक समस्या है, जिसके निदान के लिए सीमित स्तर पर चल रहे स्थानीय प्रयासों पर निर्भरता उचित नहीं है। हमें ऐसी परियोजनाओं में भी निवेश करना होगा, जिन्हें वैश्विक स्तर पर कार्यान्वित किया जा सके और जो अपशिष्ट पदार्थों का स्वरूप बदलने के स्थान पर उनका पूरा उपयोग कर सकें, जैसे जैविक ईंधन और जैविक खाद।

बड़ी चुनौती

जलकुंभी के अन्य अनुप्रयोगों को प्रोत्साहन देते समय हमें इस बात का ध्यान देना होगा कि इन अनुप्रयोगों को प्रोत्साहन देने की असल वजह है, इस वनस्पति से जलस्रोतों को मुक्त करवाना। लिहाजा जलकुंभी को स्थानीय अर्थव्यवस्था से इस तरह जोड़ना होगा कि दिनचर्या, आवश्यकता, संस्कृति और व्यापार के केंद्र में नदी और जलस्रोत रहे ना कि जलीय खरपतवार। क्योंकि यदि खरपतवार केंद्र में आ गया तो जलस्रोत का स्वास्थ्य मानवीय लालसा के चलते पुनः द्वितीयक प्राथमिकता बन जाएगा। हमारी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए कि जलकुंभी की पैदावार कम से कम हो या जैविक, रसायनिक और भौतिक विधियों द्वारा हमारे नियंत्रण में हो। यदि किसी जलाशय खासकर नदी में जलकुंभी बढ़ती है तो समय के साथ इसका असर उक्त नदी की गहराई पर पड़ता है। नदी धीरे–धीरे उथली होने लगती है, जिससे आस–पास के इलाकों में बाढ़ आने का खतरा बढ़ जाता है। जलकुंभी के नियंत्रण और प्रबंधन में इस बात का विशेष रूप से ख्याल रखना होगा कि एक समस्या का हल खोजते हुए हम कही दूसरी समस्या को आमंत्रित ना कर बैठें।

और अंत में

नदियों को पोषण संवर्धन और जलीय खरपतवारों के अतिक्रमण से मुक्त करवाने के लिए कई स्तर पर प्रयास जारी है मसलन देशभर में रसायनिक खाद के स्थान पर जीवामतृम खाद के उपयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है। खेती में नाईट्रोजन के प्रयोग को संतुलित करने और अतिरिक्त नाईट्रोजन को जलस्रोतों में मिलने से रोकने की दिशा में भारत और यूनाईटेड किंगडम के कई वैज्ञानिक साथ मिलकर शोध और अनुसंधान कर रहे हैं। नदियों की अविरलता को दोबारा कायम कर के भी जलीय खरपतवारों की वृद्धि पर अंकुश लगाया जा सकता है। इस दिशा में भी प्रयास जारी हैं। उम्मीद है कि आधुनिक विज्ञान और पारंपरिक ज्ञान के संयोग से हम आने वाली पीढ़ी को सुरक्षित जलस्रोत और खाद्यसुरक्षा की सौगात सौंपने में कामयाब होंगे।

समस्या से सबक

कहते हैं कि हर समस्या हमें एक सबक देकर जाती है। हमारे जलस्रोतों के समक्ष समस्या बनकर खड़े जलकुंभी और अन्य जलीय खरपतवार भी हमें एक महत्वपूर्ण सबक दे रहे हैं। ब्रिटिश शासनकाल में जलकुंभी को सजावटी पौधे के रूप में भारत लाया गया, जो जल्द ही एक समस्या बन गया। इसी तरह घडियाली खरपतवार के नाम से जानी जाने वाली वनस्पति जो कि कई राज्यों में तालाबों और झीलों के संकट के लिए जिम्मेदार है, 1964 में पहली बार देश में देखी गई थी। एक थ्योरी के मुताबिक यह खरपतवार अमेरिका से आयतित कुछ सामग्रियों के साथ भारत पहुंची। आज कश्मीर से लेकर छत्तीसगढ़ तक कई झीलों, तालाबों के लिए यह उभयजीवी पादप समस्याओं का सबब बन चुका है। जलकुंभी की तरह ही इस पौधे की मूल प्रवृत्ति ही तेज वृद्धि और प्रजनन है। यूरोप से आई ये प्रजातियाँ हमारे देश में सूर्य के प्रकाश की बहुलता पाकर बहुत तेजी से पनपती हैं और जलीय परितंत्र के लिए खतरा बन चुकी हैं। दरअसल ये वनस्पतियां हमारे समक्ष चुनौती बनकर इसलिए खड़ी हो गई क्योंकि हमने जलनिकायों को संसाधन तो माना लेकिन उनके जैविक परितंत्र को नहीं समझा। हमारी नदियां, तालाब, झीलें, भूमि, मैदान, पहाड़ ये सब जीवित परितंत्र है। यदि इस परितंत्र में कोई भी बाहरी वनस्पति या जंतु शामिल होता है तो पूरी श्रृंखला में परिवर्तन आ जाता है। कुछ जीव–जंतु आसानी से किसी भी परितंत्र का हिस्सा बन जाते हैं, बिना उसके मूल स्वरूप को नुकसान पहुंचाए, वहीं कुछ जीव–जंतु समूचे परितंत्र को ही असंतुलित कर देते हैं, जैसे जलकुंभी। जलीय परितंत्र के बारे में बात करें तो सिर्फ वनस्पतियों के कारण ही नहीं बल्कि व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मछलियों की किसी खास प्रजाति को प्राकृतिक जलनिकायों में प्रवेश करवाने से भी उक्त परितंत्र में असंतुलन की स्थितियां पैदा होने के प्रकरण सामने आए हैं। हम इतिहास को तो नहीं बदल सकते लेकिन इन गलतियों से सबक जरूर ले सकते हैं। इन गलतियों से मिलने वाला महत्वपूर्ण सबक यह है कि प्राकृतिक जलनिकायों में वनस्पति, सूक्ष्मजीव या किसी भी ऐसे जलीय अथवा उभयचर जंतु, जो उक्त जलनिकाय की मूल प्रजातियों से पृथक है, के प्रवेश से पूर्व विशेषज्ञों की राय अवश्य ली जाए और प्रामाणिक शोध और सहमति के बाद ही उसे प्राकृतिक तंत्र में प्रवेश दिया जाए। जलीय निकायों की जैव विविधता पर निगरानी रखने का व्यवस्थित तंत्र विकसित किया जाए।

संपर्क
गंगा नदी घाटी प्रबंधन एवं अध्ययन केंद्र (cGanga)
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर 208016, उत्तर प्रदेश, भारत
Email: info@cganga.org, Website: www.cganga.org, Contact us: +91 512 259 7792
©cGanga, 2023